संवाद

अरुणा शानबाग: अहम सवाल

जुही जैन

18 मई 2015 को अरुणा शानबाग की मौत की खबर अख़बारों और न्यूज़ चैनलों की सुर्खियों में थी। पर कौन थी अरुणा शानबाग? नवम्बर 1973 में 26 साल की युवा नर्स अरुणा के साथ अस्पताल में काम करने वाले सफ़ाई कर्मचारी, सोहनलाल बाल्मिकी ने बलात्कार किया और कुत्ते की चैन से उसका गला घोंटने की कोशिश की। हादसे के नतीजतन अरुणा की देखने-बोलने की शक्ति खत्म हो गयी। दिमाग तक पहुंचने वाली ऑक्सीजन की सप्लाई खत्म होने के कारण एक जीती जागती लड़की की हालात कुछ ऐसी हो गई जिसे मेडिकल शब्दावली में डॉक्टर 'वेजिटेटिव स्टेट' के नाम से जानते हैं। आरोपी पर सिर्फ़ चोरी और जान से मारने की कोशिश का केस चला और उसे सात साल की दोहरी सज़ा हुई।

उस जमाने में बलात्कार— सॉडमि जैसे अपराध के मामले अदालत तक नहीं जाते थे। अरुणा केस में भी कुछ ऐसा ही हुआ। *किंग एडवर्ड मेमोरिएल अस्पताल मुंबई* (केइएम) के प्रशासन ने, जहां अरुणा और बाल्मिकी दोनों काम करते थे, अरुणा की इज़्ज़त का हवाला देते हुए पुलिस में सॉडिमी का मामला दर्ज नहीं कराया। सबूत छिपा लिए गए। अस्पताल की नर्सों और प्रशासन ने पूरे 42 सालों तक अरुणा की सेवा-टहल की और उसे जीवित रखा। उसके खाने-पीने साफ़-सफ़ाई, मनोरंजन, बातचीत सभी को पूरा करने की ज़िम्मेदारी उठाई। अपनी सभी इंद्रिय शक्तियां खो चुकी अरुणा हर पल की पीड़ा झेलती अस्पताल में पड़ी रही। उसके परिवार वाले और मंगेतर ने भी उसकी सुध नहीं ली। सिर्फ़ अस्पताल के कर्मचारियों ने उसे अपने परिवार का सदस्य मानते हुए जी-जान और अपनत्व से उसकी देखभाल की।

अरुणा शानबाग की मौत ने कितने ही सवालों को हमारे सामने लाकर खड़ा कर दिया है।

सबसे पहला सवाल यह है कि अरुणा के साथ हुए अपराध-सॉडिमी की शिकायत पुलिस और क़ानून के

दरवाज़े तक क्यों नहीं पहुंचाई गई? अरुणा के सम्मान की बात के अलावा शायद एक कारण यह भी था कि 1973 में 'सॉडिमी' के अपराध को 'बलात्कार' की श्रेणी में नहीं माना जाता था। इसे महज एक 'अप्राकृतिक' क्रिया मानते हुए इसके अपराध में 10 वर्ष की सज़ा का प्रावधान था। आजकल क़ानून बदल गया है पर फिर भी कितने अपराधी दण्डाभाव में जीते हैं और औरतें कलंक और यातना का जीवन बसर करने को मजबूर हो जाती हैं।

एक दूसरी बात जिसका ज़िक्र करना महत्वपूर्ण है वह है अस्पताल खासकर नर्सों द्वारा अरुणा को मिलने वाली देखभाल। इसमें कोई विवाद नहीं है कि यह एक अनूठी मिसाल है। 42 सालों तक एक औरत की देखभाल, उसके खाने-पीने कपड़े बदलने, उसे गाना सुनाना, बातें करना और उसकी छोटी से छोटी प्रतिक्रिया को बारीकी से समझना। यह एक बहुत ही नेकी और प्रतिबद्धता की मिसाल है।

इसी से जुड़ा है तीसरा और अहम सवाल। अरुणा की एक जानकार, लेखिका पिंकी विरानी ने 2011 में अदालत में एक याचिका दायर की। पिंकी का मानना था कि अरुणा की तकलीफ़ों और अवस्था को देखते हुए उसके लिए इच्छा मृत्यु का अधिकार होना चाहिए। अस्पताल की

नर्सों को यह गवारा नहीं था— वे अरुणा को अपने परिवार का सदस्य मानती थीं और नहीं चाहती थीं कि उसे मरने के लिए छोड़ दिया जाए। अदालत ने पिंकी विरानी की याचिका पर गौर करते हुए तथा नर्सों का अरुणा से भावनात्मक जुड़ाव देखते हुए पिंकी की याचिका रद्द कर दी। साथ ही यह फ़ैसला भी सुनाया कि अरुणा जैसे मरीज़ों को निष्क्रिय रूप से शरीर त्यागने की इजाज़त है, बशर्ते सभी क़ानूनी हिदायतों का पालन किया गया हो। यानी अदालत ने उसके लिए "पैसिव यूथेनिसिया" को मंज़ूरी दी।

अस्पताल ने इस फ़ैसले को न मानते हुए अरुणा की देखरेख जारी रखी। उसका खाना-पीना, इलाज, दवा सभी चालू रहा जिसके वजह से वह 42 साल जीवित रही।

अरुणा मामले ने हमें समाज की एक ऐसी कड़वी सच्चाई से भी रुबरु कराया है जिसके बारे में हम शायद ही कभी सोचते हों। क्या हम नहीं जानते कि इलाज के लिए अस्पताल आने वाले कितने ही रोगी महंगी चिकित्सीय सेवाओं और दवाओं के भारी खर्चे न उठा पाने की स्थिति में जीने की आस छोड़ देते हैं। इलाज करवाने की यह असमर्थता भी एक तरह की इच्छा मृत्यु ही है न? कितने ही बीमार और मरनासन्न मरीज़ खर्चा न उठा पाने की स्थिति में अस्पतालों से घर वापस लौट जाते हैं या फिर इलाज के बारे में सोचना ही बंद कर देते हैं।

कुछ ऐसी भी बीमारियां होती है जिनमें सभी सुविधाओं के बावजूद रोग में विशेष फ़र्क़ या बेहतरी देखने को नहीं मिलती। ऐसी हालात में सक्षम परिवारों को भी यह सोचना पड़ता है कि इलाज जारी रखा जाए या नहीं। कुछ परिवार एक सीमा तक ख़र्चा करने के बाद इलाज बंद करने का कठोर फ़ैसला लेने को मजबूर हो जाते हैं क्योंकि वे इससे ज़्यादा रकम खर्च नहीं कर सकते। अंत में देखें तो इस पूरी प्रक्रिया में सबसे ज़्यादा फ़ायदा डॉक्टरों, अस्पतालों, दवाई की कम्पनियों और फ़ार्मा उद्योगों को ही पहुंचता है।

अरुणा के जीवन से हमें यह सबक लेना चाहिए कि हम स्वास्थ्य सेवाओं को सबके लिए उपलब्ध करा सकें। अगर हम यह मानते हैं कि हर इंसान को गरिमामय जीवन जीने और गरिमा के साथ मरने का अधिकार मिलना चाहिए तो ऐसी स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए सरकार पर दबाव बनाया जाना चाहिए जिनसे हर तबके, हर वर्ग का इंसान कम से कम तकलीफ़ और ज़्यादा से ज़्यादा देखभाल और इलाज पा सके।

यहां पर हम देखभाल और बीमार व्यक्ति की तीमारदारी की ज़िम्मेदारी की भी बात कर लें तो अच्छा रहेगा। अधिकतर देखा गया है कि रोगी की देखभाल, साफ़-सफ़ाई खाने-पीने का ज़िम्मा परिवार की औरत पर आता है। जहां औरतें आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं है वहां पुरुष रुपये पैसे से रोगी की ज़िम्मेदारी उठा लेते हैं। पर बहुत सी ऐसी स्थितियां है जहां पूरा ज़िम्मा औरत के कंधों पर आता है। फिर हम देखभाल भी उन ही लोगों की करते हैं जो हमारे परिवार के सदस्य होते हैं या जिन्हें हम अपना मानते हैं। अरुणा की देखभाल अस्पताल की नर्सों ने की क्योंकि उसका परिवार वहां नहीं था। अस्पताल की वैकल्पिक दुनिया ही उसकी अपनी हो गई थी। पर अरुणा की तरह कितने मरीज़ होते हैं? सड़क पर दुर्घटना में या घरों पर बेसहारा पड़े बुजुर्ग, बच्चे या औरतों की देखभाल कोई नहीं करता। अगर हम यही चाहते हैं कि हर व्यक्ति को एक अच्छी देखभाल नसीब हो तो यह ज़िम्मेदारी हम सबको मिलकर उठानी होगी। समुदाय और राज्य के स्तर पर भी देखभाल सुविधाओं की मांग करनी होगी।

इन सब सवालों और सरोकारों से जुड़ा है एक आख़िरी प्रश्न-औरतों की कार्यस्थल पर सुरक्षा। अरुणा यौन और शारीरिक हिंसा का शिकार हुई क्योंकि अस्पताल की सुरक्षा

में कमी थी। पर इस सुरक्षा के मुद्दे को अरुणा की देखभाल के सामने बिल्कुल नज़रअंदाज़ कर दिया गया। अस्पताल में एक महिला पर हमला होने के बाद सुरक्षित कार्यस्थल के लिए एक ज्वलंत मांग उठनी चाहिए थी। पर ऐसा नहीं हुआ। यहां तक कि अस्पताल की आन बचाने की ख़ातिर बलात्कार जैसे संगीन अपराध को दर्ज ही नहीं किया गया। यह विडम्बना ही तो है कि अरुणा के साथ होने वाले इतने बड़े अन्याय को दबाकर उस अन्याय से होने वाली पीड़ा के निदान पर ज़्यादा ध्यान दिया गया। अस्पताल के प्रशासन ने तय कर लिया कि वे हर हाल में अरुणा को ज़िंदा रखेंगे। पर क्या अरुणा वास्तव में यही चाहती थी? अगर वह बेहतर हालत में होती तो क्या वह इसी जगह इलाज करवाती? या फिर वह अस्पताल के असुरक्षित माहौल पर सवाल उठाती? अरुणा के शरीर पर अधिकार को भी अनेक तरीक़ों से आंका गया है— यौन हिंसा, देखभाल, निष्क्रिय इच्छा मृत्यु असुरक्षित काम का माहौल और न जाने क्या-क्या।

हमारे पास कोई जवाब नहीं है। यह मामला उतना साधारण भी नहीं है। इसमें अनेक जटिल सवाल और अहम सरोकार छुपे हैं। आज अरुणा शानबाग हमारे बीच नहीं है। हम आशा करते हैं कि वह उस लोक में सुखी होगी। और साथ ही उम्मीद करते हैं कि उसके जीवन और मौत से जुड़े अनेक-अनेक पहलुओं पर हम विचार करके आने वाले समय में कुछ ठोस क़दम उठा सकेंगे।

जुही जैन *नारीवादी कार्यकर्ता और हम सबला की सम्पादक हैं।*